



श्रीमद्भगवद्गीता में योग की अवधारणा एवं सार्वकालिकता

डॉ. अराधिका

सहायक आचार्य, संस्कृतविभाग, बाबा बरुआ दास पी जी कालेज, परुडिया आश्रम, अंबेडकर नगर।

Article Info

Accepted : 05 Oct 2024

Published : 30 Oct 2024

Publication Issue :

September-October -2024

Volume 7, Issue 5

Page Number : 60-65

शोधसारांश- गीता में योग की अवधारणा एवं सार्वकालिकता इसके बहुआयामी स्वरूप में निहित है। जहां कर्मयोग कर्तव्य का मार्ग है तो ज्ञानयोग सत्य का प्रकाश, भक्तियोग प्रेम का सेतु है तो ध्यानयोग शांति की साधना। ये चारों योग एक-दूसरे के पूरक हैं और मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करते हैं। अन्य ग्रंथ जैसे योगसूत्र, उपनिषद् और भक्ति सूत्र गीता के इस दर्शन को और समृद्ध करते हैं। योग केवल शारीरिक अभ्यास ही नहीं, बल्कि जीवन का संपूर्ण दर्शन है, जो आत्मा को परमात्मा से मिलन का मार्ग दिखाता है। आधुनिक युग में जहाँ तनाव, भौतिकता और अज्ञानता का बोलबाला है, वहां गीता का योग दर्शन प्रासंगिक और प्रेरणादायी है। यह हमें न केवल व्यक्तिगत शांति देता है, बल्कि सामाजिक समरसता और आत्म-जागरूकता की ओर भी ले जाता है। गीता की यह योग विषयक अवधारणा आज भी मानवता के लिए प्रकाशस्तंभ बना हुआ है।

मुख्य शब्द- श्रीमद्भगवद्गीता, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, योग।

नास्तिमायासमं पापं, नास्ति योगात्परं बलम्।

नास्तिज्ञानात्परोबन्धु, नार्हङ्कारात्परोरिपुः॥

योग एक समग्र जीवन पद्धति है, जो मन, शरीर और आत्मा के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए चित्तवृत्तियों के निरोध के रूप में अवस्थित है।ⁱ इसी अवस्थिति को गीता में समभाव कहा गया है।ⁱⁱ यह अवस्था स्वयं के लिए, स्वयं के द्वारा, स्वयं की यात्रा है। ("Yoga is the journey of the self, through the self, to the self") यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का आधार है, जो कर्मों की कुशलता का आधान करता हुआ "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"ⁱⁱⁱ की भावना को परिपुष्ट करता हुआ जरामरण से मुक्ति की चरम परिणति^{iv} प्राप्त कराता है। योगभारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, जिसकी प्रासंगिकता सार्वकालिक है।

योग एक ऐसा साधन या माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने मन, शरीर, शक्ति, भावनाओं तथा वृत्तियों से तादात्म्य स्थापित करता है। योग से ही मानव के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आदि गुणों का विकास होता है। इस अर्थ में योग व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास और वृद्धि तथा मानसिक संवर्धन की कुंजी है। योग मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। योग की विभिन्न क्रियाएं यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि को

अपनाकर व्यक्ति आत्म साक्षात्कार करता है, स्वयं को स्थिर करता है तथा कैवल्य अथवा मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

क्रियायोग^v के सम्पादनार्थ पञ्च बहिरङ्ग और संयम रूप तीन अन्तरङ्ग साधनों^{vi} के द्वारा काय वाग्बुद्धि विषया मल की निवृत्ति द्वारा आत्म तत्त्व को परमात्म तत्त्व से जोड़ने की स्थिति है। अतएव याज्ञवल्क्य ने कहा है -

“संयोगोयोग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो”^{vii}

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन और अध्यात्म का एक अनुपम ग्रंथ है, जो योग को जीवन का मूल आधार मानता है। यह केवल एक धार्मिक कृति ही नहीं अपितु मानव जीवन को संतुलन, शांति और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाने वाला मार्गदर्शक है। गीता में योग का अर्थ केवल शारीरिक आसनों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मन, बुद्धि और आत्मा के संयोजन का प्रतीक है। कुरुक्षेत्र के युद्ध भूमि में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चार प्रमुख योगों - कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और ध्यानयोग-का उपदेश दिया, जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को वर्णित करते हैं। ये योग एक-दूसरे के पूरक हैं और मानव को उसके परम लक्ष्य, मोक्षतक पहुँचाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता कर्मयोग से निष्काम कर्म, ज्ञानयोग से आत्म प्रकाशन, भक्ति योगसे प्रेम और समर्पण तथा ध्यान योग से मन के संयम को स्थायित्व एवं प्रवृद्धि प्रदान करती है। गीता का यह योग दर्शन अन्य संस्कृत ग्रंथों जैसे पतंजलि योगसूत्र, उपनिषद्, और नारद भक्ति सूत्र से भी प्रेरणा लेता है और उन्हें समृद्ध करता है।

1. कर्मयोग: निष्काम कर्म का मार्ग - कर्मयोग गीता का प्रथम और सबसे व्यावहारिक मार्ग है, जो जीवन में कर्तव्यपालन और संतुलन की शिक्षा देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं - "तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में नहीं। इसलिए न तो फल की चिंता कर और न ही कर्म न करने में आसक्ति रख।"

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।"^{viii}

वस्तुतः यह वाक्य कर्मयोग का मूल मंत्र है। यहाँ योग का अर्थ है-कर्म में निष्कामता। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि जीवन में कर्म अनिवार्य है, परंतु फल की इच्छा बंधन का कारण बनती है। तीसरे अध्याय में वे आगे कहते हैं - " बिना आसक्ति के निरंतर अपने कर्तव्य का पालन कर क्योंकि आसक्ति रहित होकर कर्म करने वाला पुरुष परमपद को प्राप्त करता है---"

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।"^{ix}

कर्मयोग का यह सिद्धांत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है। उदाहरण के लिए, राजा जनक जैसे कर्मयोगी ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया, क्योंकि वे अपने कर्तव्यों को निष्काम भाव से करते थे। गीता के पाँचवें अध्याय में भी कर्मयोग और संन्यास के बीच संतुलन की बात कही गई है-"संन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी हैं, परंतु संन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है"-

"संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।"^x

"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः" उक्ति द्वारा योगसूत्र में भी कर्मयोग कीही नींव परिलक्षित होती है।

कर्मयोग चित्त की फलाकांक्षा और आसक्ति जैसी वृत्तियों को नियंत्रित करता है। यह कर्मयोग आधुनिक जीवन में भी प्रासंगिक है, जहाँ लोग तनाव और अपेक्षाओं से घिरे रहते हैं। कर्मयोग सिखाता है कि अपने कार्य को पूर्ण निष्ठा से करें, परंतु परिणाम की चिंता न करें। यह दृष्टिकोण न केवल मानसिक शांति देता है, बल्कि कार्यकुशलता को भी बढ़ाता है।

2. ज्ञानयोग: आत्मा का प्रकाश- ज्ञानयोग वह मार्ग है, जो अज्ञान के अंधेरे को दूर कर आत्मा और परमात्मा के एकत्व को प्रकट करता है। गीता के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-"इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है। योग में सिद्ध व्यक्ति समय के साथ इसे स्वयं अपने भीतर प्राप्त करता है।"

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।" ^{xi}

ज्ञानयोग का आधार आत्म-चिंतन, विवेक और सत्य की खोज है। गीता के त्रयोदश अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को समझाया गया है- "मुझे ही सभी क्षेत्रों का क्षेत्रज्ञ जान, हे भारत ! क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को ही मैं सच्चा ज्ञान मानता हूँ।"

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।" ^{xii}

यहाँ क्षेत्र शरीर और प्रकृति को दर्शाता है, जबकि क्षेत्रज्ञ आत्मा है। ज्ञानयोग इस भेद को मिटाकर आत्मा का परमात्मा से एकाकार स्थापित करता है। सप्तम अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-"जो महात्मा यह जान लेता है कि वासुदेव ही सब कुछ है, वह दुर्लभ है।"

"वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।" ^{xiii}

मुण्डक उपनिषद् में भी ज्ञान की महिमा बताई गई है-

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।" ^{xiv}

ज्ञानयोग परा विद्या है, जो आत्मा को ब्रह्म से जोड़ती है। यह योग सांख्य दर्शन से भी प्रेरित है, जो प्रकृति और पुरुष के भेद को समझाता है। आधुनिक संदर्भ में ज्ञानयोग आत्म-जागरूकता और तार्किक चिंतन का आधार बन सकता है। यह हमें जीवन के मिथ्या स्वरूप को पहचानने और शाश्वत सत्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

3. भक्तियोग: प्रेम और समर्पण का मार्ग - भक्तियोग गीता का सबसे सरल और हृदयस्पर्शी मार्ग है। बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-"जो भक्त अपने मन को मुझमें स्थापित कर, श्रद्धा के साथ निरंतर मेरा चिंतन करते हैं, वे मुझे सबसे श्रेष्ठ योगी प्रतीत होते हैं।"

"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।" ^{xv}

भक्तियोग में योग का अर्थ है- भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण। नवम् अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं-"मुझमें मन लगाओ, मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो। इस तरह आत्मा को मुझमें संयुक्त कर तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।"

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः।" ^{xvi}

यदि दृढ़ता से मुझ पर अपना मन स्थिर करने में असमर्थ हो तो सांसारिक कार्यकलापों से मन को विरक्त कर भक्ति भाव से निरंतर मेरा स्मरण करने का अभ्यास करो। यदि तुम भक्ति मार्ग के पालन के साथ मेरा स्मरण करने का अभ्यास नहीं कर सकते तब मेरी सेवा के लिए कर्म करने का अभ्यास करो। इस प्रकार तुम पूर्णता की अवस्था को प्राप्त कर लोगे। यदि तुम भक्तियुक्त होकर मेरी सेवा के लिए कार्य करने में असमर्थ हो तब अपने सभी कर्मों के फलों का त्याग करो और आत्म स्थित हो जाओ। शारीरिक अभ्यास से श्रेष्ठ ज्ञान है, ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान है और ध्यान से श्रेष्ठ कर्म फलों का परित्याग है और ऐसे फलकात्याग करके शीघ्र मन को शांति प्राप्त होती है।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को परम प्रेम कहा गया है:

"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।"^{xvii}

भक्तियोग वह अवस्था है, जहाँ भक्त और भगवान के बीच कोई भेद नहीं रहता। यह योग सभी के लिए सुलभ है, क्योंकि इसमें केवल श्रद्धा और प्रेम की आवश्यकता है। भक्ति के नवधा प्रकार - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन - इस मार्ग को और समृद्ध करते हैं। प्रह्लाद, मीरा और हनुमान जैसे भक्तों ने भक्तियोग के माहात्म्य को सिद्ध किया। आधुनिक जीवन में भक्तियोग तनाव से मुक्ति और भावनात्मक संतुलन का साधन बन सकता है। यह हमें प्रेम और विश्वास के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

4. ध्यानयोग: मन का संयम - ध्यानयोग मन को एकाग्र करने और आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का साधन है। षष्ठ अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं- "इस प्रकार आत्मा को संयमित कर, नियंत्रित मन वाला योगी मेरे में स्थित परम शांति और निर्वाण को प्राप्त करता है।"

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।"^{xviii}

ध्यान द्वारा योगी मन को वश में करने का प्रयास करते हैं क्योंकि अप्रशिक्षित मन हमारा बुरा शत्रु है और प्रशिक्षित मन हमारा प्रिय मित्र है। श्रीकृष्ण अर्जुन को सावधान करते हैं कि कठोर तप में लीन रहने से कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सकता और इसलिए मनुष्य को अपने खान-पान, कार्य-कलापों, अमोद-प्रमोद और निद्राआदि को संतुलित रखना चाहिए। ध्यानयोग में योगी अपने चित्त को स्थिर करता है। ध्यानयोग की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि भारी विषयों के चिंतन से मन को हटाकर नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थिर करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण एवं अपान वायु को सम करना चाहिए।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवौ:।

प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।

अष्टम अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं- "सभी इंद्रियों को संयमित कर, मन को हृदय में स्थापित कर और प्राण को मस्तक में ले जाकर योग धारणा में स्थित हो।"

"सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।

मूर्ध्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।"^{xix}

कठोपनिषद् में भी ध्यान की महिमा बताते हुए कहा गया है -

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।^{xx}

यहाँ मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया ही ध्यानयोग का आधार है। पतंजलि के अष्टांग योग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-ध्यानयोग को और गहराई देते हैं। आधुनिक जीवन में ध्यानयोग मानसिक स्वास्थ्य, एकाग्रता और आत्म-नियंत्रण के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह योग सभी योगों का आधार है, क्योंकि इसके बिना मन की शुद्धि संभव नहीं।

गीता में योग विषय पर शोधपत्र लिखने का उद्देश्य इस में वर्णित चतुर्विध योग से परिचित कराना तथा व्यक्तिगत जीवन में इसे अवधारित करने एवं जन सामान्य तक इसे पहुंचाने से है। आज 'योग' एक दिव्य शक्ति के रूप में अधिष्ठित है। दिन-प्रतिदिन योग हमारे लिए महत्वपूर्ण होता जा रहा है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक अथवा आध्यात्मिक समुन्नयन हेतु योग आज बहुत ही प्रासंगिक है। आधुनिक मानव जीवन में शांति है ही नहीं, द्वन्द्व, तनाव, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा के कारण वह हमेशा असन्तुष्ट एवं व्यग्र रहता है। ऐसे में योग कारगर सिद्ध हुआ है, जिसने मनुष्य को असीम शांति प्रदान की है, क्योंकि मानसिक तनाव को किसी भी औषधि से दूर नहीं किया जा सकता है, उसका स्थायी उपचार योग के द्वारा ही सम्भव है। एक योगी व्यक्ति में तृष्णा रहित भावों के साथ सर्वधर्म, समभाव स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो विश्व को "वसुधैव कुटुम्बकम्" की ओर ले जाती है।

गीता में योग की अवधारणा एवं सार्वकालिकता इसके बहुआयामी स्वरूप में निहित है। जहां कर्मयोग कर्तव्य का मार्ग है तो ज्ञानयोग सत्य का प्रकाश, भक्तियोग प्रेम का सेतु है तो ध्यानयोग शांति की साधना। ये चारों योग एक-दूसरे के पूरक हैं और मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करते हैं। अन्य ग्रंथ जैसे योगसूत्र, उपनिषद् और भक्ति सूत्र गीता के इस दर्शन को और समृद्ध करते हैं। योग केवल शारीरिक अभ्यास ही नहीं, बल्कि जीवन का संपूर्ण दर्शन है, जो आत्मा को परमात्मा से मिलन का मार्ग दिखाता है। आधुनिक युग में जहाँ तनाव, भौतिकता और अज्ञानता का बोलबाला है, वहाँ गीता का योग दर्शन प्रासंगिक और प्रेरणादायी है। यह हमें न केवल व्यक्तिगत शांति देता है, बल्कि सामाजिक समरसता और आत्म-जागरूकता की ओर भी ले जाता है। गीता की यह योग विषयक अवधारणा आज भी मानवता के लिए प्रकाश स्तंभ बना हुआ है।

सन्दर्भ-

- i."योगः चित्तवृत्तिनिरोधः -पतंजलि योगसूत्र, सूत्र 1.2
- ii.समत्वंयोगउच्यते- श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 48
- iii.कुमारसम्भवम् 5/33
- iv.न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् - श्वेताश्वतरोपनिषद्- 2.12
- v.तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः' - पातु यो सू 2.1
- vi.यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।पातुसूत्र 2.29
- vii.पातंजल दर्शन - सर्वदर्शन संग्रह - चौखम्भा विद्याभवन प्रकाशन - पृष्ठ 547
- viii.श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 47
- ix.श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 3, श्लोक 19
- x.श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 5, श्लोक 2

- xi. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4, श्लोक 38
- xii. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 13, श्लोक 2
- xiii. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 7, श्लोक 19
- xiv. मुण्डक उपनिषद्, 1.1.4
- xv. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 12, श्लोक 2
- xvi. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 9, श्लोक 34
- xvii. नारद भक्ति सूत्र, सूत्र 2
- xviii. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 15
- xix. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 8, श्लोक 12
- xx. कठोपनिषद्, 1.3.3